Indian J. Soc. & Pol. 08 (01) :79-82 : 2021 **ISSN: 2348-0084 (PRINT)**
31 January 2021 **ISSN: 2455-2127(ONLINE)**

राजनीतिक दल और पंचायती राज संस्थायें

पंकज सिंह[1]
[1]सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, डी0ए0वी0पी0जी0 कालेज आजमगढ़, उ0प्र0, भारत

ABSTRACT

लोकतन्त्र के पहियों के रूप में राजनीतिक दल अपरिहार्य है राजनीतिक दल बहुत बड़ी सीमा तक हमारे जीवन के महत्वपूर्ण अंग बन चुके है। ''राजनीति'' शब्द का उच्चारण करते समय उसमें राजनीतिक दलों की ध्वनि झंकृत होती है। लोकतन्त्र, चाहे उसका कोई भी स्वरूप क्यों न हो, राजनीतिक दलों की अनुपस्थिति में अकल्पनीय है, इसीलिए उन्हें लोकतन्त्र का प्राण कहा गया है।यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि पंचायती राज की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि राजनैतिक दल पंचायती राज की गतिविधियों में हस्तक्षेप न करें और यह भी मान लें कि वह राजनीति में शक्ति को प्राप्त करने के लिए आधारभूत भूमिका निर्वाह करती है। यह निःसन्देह कहा जा सकता है जैसे–जैसे चेतना निम्न स्तर पर जागृत होगी ये लोग राजनीतिज्ञों की महत्वाकांक्षी प्रवृत्तियों से कम प्रभावित होंगे किन्तु आरम्भिक चरण में यह आवश्यक है कि राजनीतिक दल व्यक्तियों के हितों को देखते हुए आत्म संयम से कार्य करे और निर्वाचित प्रतिनिधियों को दलगत राजनीति को अपनाने का आह्वान न करें।

KEYWORDS: *लोकतंत्र, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण, पंचायती राज, राजनीतिक दल,*

भारत में पंचायतीराज व्यवस्था की शुरूआत को एक ऐतिहासिक घटना कहा गया है। पंचायती राज संस्थाओं से अधिक प्रशंसा बहुत ही कम संस्थाओं को प्राप्त हुई है। पं0 नेहरू ने स्वयं कहा था कि ''मैं पंचायती राज के प्रति पूर्णतः आशान्वित हूँ। मैं महसूस करता हूँ कि भारत के सन्दर्भ में यह बहुत कुछ मौलिक एवं क्रन्तिकारी है।'' प्रो0 रजनी कोठारी के अनुसार ''इन संस्थाओं ने नये स्थानीय नेताओं को जन्म दिया है जो आगे चलकर राज्य और केन्द्रीय सभाओं के निर्वाचित प्रतिनिधियों से अधिक शक्तिशाली हो सकते हैं। कांग्रेस और अन्य दलों के राजनीतिज्ञ इन संस्थाओं को समझने लगे हैं। अब वे राज्य विधान मण्डल के बजाय पंचायत समिति और जिला परिषदों को तरजीह देने लगे हैं।''

किसी देश का राजनीतिक ढ़ाँचा दूसरे देश के राजनीतिक ढ़ाँचे के अनुरूप हो सकता है, लेकिन वहॉ की राजनीति एक समान नहीं हो सकती। देश की राजनीति वहाँ की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर करती है। भारत में सामाजिक एवं धार्मिक संस्थायें अति प्राचीन है, परन्तु राजनीतिक संस्थायें नयी है। प्राचीन धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं और नयी राजनीतिक संस्थाओं में परस्पर अन्तःक्रिया से राजनीति के स्वरूप एवं शैली का विकास होता रहा है।

मॉरिश जोन्स ने अपने पुस्तक ''दी गवर्नमेन्ट एण्ड पॉलिटिक्स आफ इण्डिया'' में इसी प्रकार का विचार व्यक्त किये है, उनके अनुसार ''भारतीय राजनीतिक व्यवस्था एवं सामाजिक व्यवस्था में एक अस्थिर अन्तःविरोध पाया जाता है। जब ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायत के चुनाव नियमित कराये जाते है तो वहाँ पर विभिन्न प्रकार के परिवर्तन और संयोजन होते है, परम्परागत होड़ स्पष्ट होती है और प्रश्नगत समूहों का प्रादुर्भाव होता है।'' जहाँ कही भी इस प्रक्रिया को पूरा–पूरा अवसर प्रदान किया गया है वहॉ ऐसे मामले सामने आये है, जब कोई अनुसूचित जाति का धोबी या नाई अच्छे पदों पर चुन लिए गये हो। जो अब तक किसी जाति विशेष या परिवार के एकाधिकार में रहा है। शक्ति समानता का यह परिवर्तन हमारी परम्परागत सामाजिक व्यस्था में है।

भारत में संसदीय लोकतन्त्र के ''वेस्टमिनिस्टर माडल'' के अन्तर्गत ''राजनीतिक सम्प्रभुता'' की अवधारणा ने समय–समय पर होने वाले चुनावों के अतिरिक्त अपनी वास्तविक महत्ता खो दी है। यदि ग्राम पंचायत भारतीय राजनीति का आधारभूत इकाई की भॉति कार्य करती है तभी वह राजनैतिक सम्प्रभु जनता की सामुदायिक इच्छा शक्ति को लागू करने वाली एक जागरूक शक्ति के रूप में कार्य कर सकती है। जीन जेक्स रूसो ने कहा है कि ''सम्प्रभु केवल तभी कार्य कर सकता है जब जनता एकत्रित हो।''

प्रत्यक्ष लोकतन्त्र की परिकल्पना बड़े आकार और जटिलपूर्ण जीवन वाले ''आधुनिक राज्य'' में लागू होती नहीं दिखती तो भी ग्रामीण संस्थाओं के नये रूप में वे विकसित किये जा सकते है। ग्राम स्तर पर गॉवसभा को लोकतन्त्र की आधारभूत इकाई मान कर जनता की राजनीतिक सम्प्रभुता सुरक्षित की जा सकती है।

लोकतन्त्र के पहियों के रूप में राजनीतिक दल अपरिहार्य है राजनीतिक दल बहुत बड़ी सीमा तक हमारे जीवन के महत्वपूर्ण अंग बन चुके है। ''राजनीति'' शब्द का उच्चारण करते समय उसमें राजनीतिक दलों की ध्वनि झंकृत होती है। लोकतन्त्र, चाहे उसका कोई भी स्वरूप क्यों न हो, राजनीतिक दलों की अनुपस्थिति में अकल्पनीय है, इसीलिए उन्हें लोकतन्त्र का प्राण कहा गया है।

राजनीतिक दल ऐसे व्यक्तियों का न्यूनाधिक संगठित समुदाय है जिनका सार्वजनिक महत्व के प्रश्नों पर समान दृष्टिकोण है और जो अपने सिद्धान्तों को कार्यान्वित करने के लिए

1: Corresponding Author

शान्तिपूर्ण तथा संवैधानिक रीति से शासन पर अपना अधिकार चाहते है।(कश्यप और गुप्ता, 1971, पृ0336)

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि पंचायती राज की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि राजनैतिक दल पंचायती राज की गतिविधियों में हस्तक्षेप न करें और यह भी मान लें कि वह राजनीति में शक्ति को प्राप्त करने के लिए आधारभूत भूमिका निर्वाह करती है। यह निःसन्देह कहा जा सकता है जैसे–जैसे चेतना निम्न स्तर पर जागृत होगी ये लोग राजनीतिज्ञों की महत्वाकांक्षी प्रवृत्तियों से कम प्रभावित होंगे किन्तु आरम्भिक चरण में यह आवश्यक है कि राजनीतिक दल व्यक्तियों के हितों को देखते हुए आत्म संयम से कार्य करे और निर्वाचित प्रतिनिधियों को दलगत राजनीति को अपनाने का आह्वान न करें।(नारायण,1961 पृ08)

इन पंचायती राज संस्थाओं में राजनीतिक पार्टियों का प्रवेश करा देने से विधानसभा और संसद के समान यहॉ भी राजनीतिक विकृति व्याप्त हो जायेगी, जो वर्तमान में राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर हावी है जिसके कारण देश में राजनीतिक विकृति व्याप्त है। पंचायतों को आर्थिक विकास और स्थानीय शासन के मामले में अधिक अधिकार से सम्पन्न कर जनता को बुनियादी स्तर से शासन और विकास–विनियोजन के सन्दर्भ में सहभागी बना कर लोकतन्त्र को यथार्थ रूप दिया जा सकता है।(आज, 7 जनवरी 1979)

किस सीमा तक राजनीतिक दलों को पंचायती राज संस्थाओं के चुनावों में भाग लेना चाहिए? यह एक ऐसा प्रश्न है, जो देश में बहस का केन्द्र बिन्दु स्वतन्त्रता के पूर्व भी बना रहा। वास्तव में ''सन्थानम कमेटी'', (1964) जो पंचायती राज चुनावों से सम्बन्धित थी उसने यह मत व्यक्त किया कि एक ऐसे अत्यन्त अधिक विवाद के बिन्दु का सामना करना पड़ जो ''प्रश्न'' से बढ़ कर था।(संथानम कमेटी रिपोर्ट, 1956,पृ051) प्रश्न का महत्व इसलिए बढ़ गया था क्योंकि दो प्रमुख विचार धारायें परस्पर इस विषय पर कि पंचायती राज संस्थाओं के चुनावों में राजनीतिक दलों की भागीदारी हो अथवा न हो, विरोधी रही। एक प्रमुख विचारधारा पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव–गैर राजनीतिक आधार का यह कहकर विरोध करती थी कि ''इससे पंचायती राज संस्थायें दिशाहीन हो जायेंगी।''(हिन्दुस्तान टाइम्स 18 मई 1989)

सधारणतया यह कहा जा सकता है कि जहॉ भी सत्ता है वहॉ राजनीति निश्चय ही रहेगी यह राजनीति शास्त्र का मौलिक सिद्धान्त है जैसा कि अर्थशास्त्र में माँग और पूर्ति का। इसकी आवश्यकता को स्वीकार करते हुए अशोक मेहता समिति ने संस्तुति की थी कि राजनीतिक दलों को प्रत्येक स्तर के चुनाव में भाग लेने की अनुमति होनी चाहिए लेकिन यह अनुमति इस आधार पर होना चाहिए कि राजनीतिक दल बिना चुनाव चिन्ह के भाग लें, नही ंतो मतदाताओं के बीच (चुनाव चिन्ह से) भ्रम पैदा होगा और राजनैतिक उत्तरदायित्व के मूल्यों में ह्रास होगा।(मेहता,1978 पृ052) अशोक मेहता समिति की सिफारिशों क्रियान्वित नहीं की जा सकी किन्तु प्रधानमंत्री मोरार जी देसाई का विचार था कि राजनीतिक दलों को अपने आप में समझौता करना चाहिये कि वे ग्राम पंचायतों के चुनाव से दूर रहेंगे। साथ ही साथ उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि पंचायतों का चुनाव कम खर्चीला हो एवं गुटबन्दी से वंचित हो। राजनीतिक दल जिला स्तर की संस्था के कार्यकलापों में भाग ले सकते है।(टाइम्स आफ इण्डिया, 20 मई 1979)

उत्तर प्रदेश पंचायत विधि में राजनीतिक दलों की भागीदारी के सम्बन्ध में कोई प्रावधान नहीं है। ऐसे विषय में संविाान को राजनीति दलों के सन्दर्भ में तब तक कुछ नहीं कहना है जब तक कि समुचित आनुपातिक प्रतिनिधित्व का प्रावधान न हों। संविधान के अन्तर्गत राजनीतिक दलों का उल्लेख केवल दल–बदल विरोधी धाराओं के सम्बन्ध में ही किया गया है। 64वॉ संविधान संशोधन बिल जिसे कांग्रेस सरकार (राजीव गॉधी) ने 1989 में संसद में प्रस्तुत किया था, पंचायत की परिभाषा स्वशासन की एक संस्था के रूप में की। राजनीतिक दलों को राज्य स्तर से नीचे की संस्थाओं में भागीदारी के सन्दर्भ में विरोधी विचार धाराओं के चलते तथा देश के सबसे बड़े राजनीतिक दल (कांग्रेस आई) के इस विषय पर अनुकूल दृष्टिकोण के अभाव में इस बहस का कागजी प्रयास इस तर्क के साथ समाप्त हुआ कि बिना राजनीतिक दलों की भागीदारी के पंचायतें केवल ऊपर से जनतान्त्रिक रहेगी, उनमें तत्व का अभाव रहेगा।

महात्मा गाँधी के द्वारा जागृत सर्वोदय विचार–धारा के अनुसार पंचायती राज संस्थाओं को दलगत भावना से अलग माना गया। दलविहीन का तात्पर्य था कि राजनीतिक दलों को इससे दूर रखा जाय। सर्वानुमति (सर्वसम्मति) को ही किसी निर्णय पर पहुँचने के लिए सर्वश्रेष्ठ माना गया था। जय प्रकाश नारायण का मत था कि राजनीतिक दल सम्पूर्ण पंचायत राज योजनाओं को दूषित कर देते है और विकेन्द्रीकरण को अपनी स्वार्स्थ सिद्ध के लिए प्रयुक्त करते है। सर्वोदयी विचार धारा के लोग भारतीय जनतन्त्र को पुनः नीचे ग्रामसभा स्तर से मजबूत कर निर्मित करना चाहते थे। ऊपर समिति, जिला, राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर इसकी पुर्नस्थापना की मान्यता करते थे। प्रत्येक स्तर पर प्रतिनिधित्व अप्रत्यक्ष चुनाव के आधार पर अनिवार्य मानते थे। उनका मत था कि यदि सर्वसम्मति से नही ंतो सामान्य अनुमति का सिद्धान्त प्रशासन के प्रत्येक स्तर पर लागू होगा, इससे दलगत राजनीति और चुनाव प्रचार का खात्मा होगा।

निःसन्देह रूप से इस तत्व में एक उत्तम नैतिक भावना है, लेकिन देश में अधिकांश जनसंख्या अशिक्षित और अनभिज्ञ है, अतः इस दृष्टिकोण के समर्थकों का मत था कि ''इन्हें दलीय राजनीति के संघर्ष में तथा दलों की आकांक्षाओं का बन्धक तथा शिकार नहीं बनाया जाना चाहिए। जय प्रकाश नारायण राजनीति दलों के आलोचक थे, उनका मत था कि राजनीतिक दल स्वशासन में बाधक होते है, और स्थानीय स्वतन्त्रता की भावना में बाधा उत्पन्न करते है। जय प्रकाश नारायण के अनुसार ''स्थानीय स्वशासन एक ऐसी अवस्था में निर्मित नहीं हो सकती है जिसमें प्रतिस्पर्द्धात्मक राजनीतिक दल हो।''(नारायण,1967) जय प्रकाश नारायण का अन्तिम दृष्टिकोण दलविहिन जनतन्त्र का था। उन्होंने

1961 में राज्य सरकारों को सलाह दी थी कि पंचायतों के चुनाव बिना संघर्ष के कराये जाये और जिन पंचायतों में निर्विरोध चुनाव सम्पन्न हो उन्हें पुरस्कृत किया जाय।

उदारवादी जनतान्त्रिक विचारधारा के लोगों ने उपरोक्त दृष्टिकोण का विरोध किया और उनकी इच्छा राजनीतिक दलों की स्थानीय चुनावों में भागीदारी के पक्ष में थी। एस0 के0 डे0 ने बिना किसी विरोध के जनतन्त्र को एक मृत संस्था की परिभाषा दी थी उनका मत था कि एक स्वावलम्बी ग्राम जनतन्त्र जिसमें भगवान, भयभीत लोग समान रूप से, सोचते, विचारते और कार्य करते हो, एक ऐसा ग्राम है, जो उत्पन्न होने के पूर्व मृत हो गया हो। ऐसी निर्जीव संस्था से जीवन नहीं पैदा हो सकता। जनतन्त्र विचारों और आदर्शों की अपेक्षा एक निरन्तर स्वस्थ्य संघर्ष से पैदा होता है, केवल मृतक लोग प्रतिस्पर्धा नहीं करते।(डे,1960) उनका मत है कि पंचायती राज को किसी भी स्थिति में राजनीति से पृथक रखना सम्भव नहीं है।

नम्बूदरीपाद का दृष्टिकोण सही है कि पंचायती राज का नवीन ढॉचा केवल स्थानीय कार्य और अधिकार का एक साधारण अंग ही नहीं अपितु वह इन राजनीतिक शक्तियों का अधिकार बने जिन्हें हम पंचायती राज कहते है। राजनीतिक दल इस स्थिति में यदि कोई कदम उठाते है तो स्वभावतः उसकी शक्ति का ध्यान रखना होगा।(नम्बूदरीपाद,1960)

सन् 1964 में जयपुर (राजस्थान) में ''पंचायती राज और जनतन्त्र'' विषय पर विचार करने के लिए एक सेमिनार (संगोष्ठी) आयोजित किया गया। जिसमें सर्वोदय विचार धारा एवं उदारवादी जनतान्त्रिक विचारधारा के लोगों में काफी संघर्ष रहा। एल0 सी0 जैन–ग्रामीण संस्थान विद्याभवन ने सर्वोदय के दृष्टिकोण का समर्थन किया जब कि सी0 पी0 भाम्बरी और अन्य लोगों का तर्क था कि पंचायती राज व्यवस्था में राजनीतिक दलों का शामिल होना आवश्यक और वांछनीय दोनो है। राजनीतिक दल पंचायतों के आधुनिकीकरण में हथियार का कार्य करेगी। पंचायती राज संस्थायें प्रगतिशील दलों के आधार प्रदान करती है जिससे पिछड़ेपन और परम्पराओं की शक्तियों के विरूद्ध कार्य और संघर्ष किया जाय। ग्रामीण लोगों में राजनीतिक चेतना जागृत की जानी चाहिए। राजनीति दलों को ग्रामीण जनता में राजनीतिकरण के निर्मित एक बड़े यन्त्र के रूप में कार्य करना होगा।

उपरोक्त विषय पर सन्थानम कमेटी के रिपोर्ट में कहा गया है कि स्वतन्त्रता के पूर्व तथा इसके बाद ऐसे प्रस्ताव थे कि नगर बोर्डो के चुनाव में राजनीतिक दल भाग न ले। अधिकांशतः सभी दल ऐसे चुनावों से दूर रहे किन्तु किसी समयावधि तक इनसे अलग रहने का कोई प्रस्ताव नहीं था। स्वतन्त्रता के बाद से सन् 1964 तक लगभग सभी राजनीतिक दल पंचायत के चुनावों में प्रत्यक्ष भागीदारी से विमुख रही। इसका मुख्य कारण यह था कि छोटे बोर्डों में जिनकी संख्या 100 से 500 तक मतदाताओं की होती थी, स्थानीय प्रभावशाली व्यक्ति के सफल होने की सम्भावना रहती थी। ये लोग पंचायत चुनाव में पार्टी चिन्हों का प्रयोग नहीं करते थे किन्तु राजनीतिक दल चुने हुए सदस्यों को अपने दल में सूचीबद्ध कर लिया करते थे। पंचायत चुनावों में पार्टी चुनाव चिन्हों का प्रयोग केवल केरल राज्यों को छोड़कर अन्यत्र कही भी अनुमन्य न थे। किन्तु यहॉ भी सन्थानम कमेटी की समीक्षा काल में इनका प्रयोग नहीं किया गया। सन्थानम कमेटी का दृष्टिकोण था कि यद्यपि कानूनी तौर से राजनीतिक दलों के प्रभाव पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकता किन्तु पार्टी के चुनाव चिन्हों का गॉवों में प्रवेश देने के प्रोत्साहन गलत तथा अनावश्यक है। कमेटी की सिफारिशें ध्यान आकर्षित करने लायक है क्योंकि यह उस समय की मनोभावनाओं को प्रतिविम्बित करती है। समिति की सिफारिशें निम्न थी।(संथानम,1965 पृ055)

क – पंचायत राज चुनावों को प्रभावित करने से बचने के लिए राजनीतिक दलों पर प्रतिबन्ध लगाने की किसी कानूनी प्रक्रिया की जरूरत नहीं है।

ख – पंचायती राज संस्थाओं के किसी भी चुनाव में किसी भी राजनीतिक दल द्वारा चुनाव चिन्ह प्रदान नहीं करना चाहिए।

ग – पंचायती राज संस्थाओं के सम्बन्ध में राजनीतिक दलों के किसी प्रतिनिधित्व की आवश्यकता नहीं है।

घ – पंचायती राज संस्थाओं के सदस्यों में किसी राजनीतिक दल समूहों को किसी प्रकार की सरकारी मान्यता नहीं मिलनी चाहिए।

समिति ने यह भी विश्वास प्रगट किया कि चुनावी मुकाबले स्वस्थ और शिक्षाप्रद दोनों रहे और समस्त गॉवों में चुनाव हुए जहॉ सर्वानुमति और सर्वसम्मति का आशय होता था परम्परागत पदाधिकारियों, अधिकारियों का आधिपत्य कायम रहना और युवाओं की भावनाओं को दबाये रखना।

समिति ने एक अनुभव जिसे गुजरात में पाया था, उसका उल्लेख करते हुए कहा कि हमने गुजरात के एक ऐसे गॉव का निरीक्षण किया जहॉ पंचायत चुनाव सर्वानुमति से कई कार्यकाल तक होते रहे, जिनमें पदाधिकारियों में कोई परिवर्तन नहीं होता था। जब हम लोगों ने प्रश्न किया कि क्या वहॉ पंचायत की सेवा करने के लिए कोई अन्य व्यक्ति नहीं है जिसके अभाव में एक ही व्यक्ति निरन्तर लम्बी अवधि तक चुना जाता रहा तो केवल यही उत्तर था कि कोई भी परिवर्तन नहीं चाहता।(वही) संथानम समिति का उस समय का निष्कर्ष बहुत ही महत्वपूर्ण था कि ''चुनावी मुकाबले स्वस्थ्य और शिक्षाप्रद दोनों होते है'', मुकाबलों से बड़े पैमानों पर विमुख रहने का तात्पर्य युवकों को दबाये रखना होता है और इससे स्वयं पंचायती राज के विकास में ठहराव आ जाता है।(वही)

सन्थानम कमेटी के रिपोर्ट के 4 वर्ष पश्चात एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। सन् 1969 में हैदराबाद में पंचायती राज विषय पर आयोजित सम्मेलन में बहुमत की राय थी कि नगरीय और ग्रामीण भारत, दोनों के लिए एक वैचारिक आधार हेतु राजनैतिक प्रतिस्पर्धा होनी आवश्यक है। किन्तु सम्मेलन में असहमति का स्वर इस विचार का था कि ग्रामीण क्षेत्र के आमने–सामने के समुदाय की सेवा तभी हो सकती है जब राजनीतिक दलों की प्रतिस्पर्धा से उसे अलग रखा जाय। परन्तु

यह सम्भव नहीं है कि राजनीतिक दलों को पूर्णतया पंचायती राज के क्षेत्र से अलग रखा जाय।

इस प्रकार 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम सहभागी लोकतन्त्र की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास है। इस संशोधन के पूर्व पंचायती राज व्यवस्था की आधार शिला कमजोर थी, क्योंकि इसका संक्षिप्त प्रावधान संविधान में राज्य नीति निदेशक तत्वों के प्रावधानों को लागू करने हेतु केन्द्र और राज्य सरकारों पर कोई संवैधानिक बाध्यता नहीं होती है।

REFERENCES

कश्यप सुभाष एवंगुप्ता, विश्व प्रकाश, (1971) *'राजनीति–कोश* दिल्ली, राजकमल प्रकाशन

नारायण, जय प्रकाश, (1961) 'स्वराज फार दी पीपुल' अखिल भारतीय सर्व सेवा संघ, वाराणसी

आज, सम्पादकीय, 'पंचायती राज की सार्थकता', 7 जनवरी 1979

सन्थानम कमेटी, (1965) *'रिपोर्ट कमेटी आन पंचायती राज इलेक्शन', निमिस्ट्री ऑफ कम्यूनिटी डेवलपमेन्ट एण्ड को–आपरेशन,* नई दिल्ली, गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया

सुब्रमण्यम, के0, 'पंचायती राज रिफार्म : ए फ्लो पिटफुलस् कैन बी अवॉइडेड, *दी हिन्दुस्तान टाइम्स,* 18 मई 1989

वीनर, मायरन (1962) पोलिटिकल पार्टीज एण्ड पंचायती राज, दी इण्डियन जर्नल आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, वाल्यूम 8, नं0 4, अक्टूबर–दिसम्बर

मेहता, अशोक (1978) *मिनिस्ट्री आफ एग्रीकल्चर एण्ड इरिगेशन, डिपार्टमेन्ट आफ रूरल डेवलपमेन्ट, कमेटी आन पंचायती राज' इन्स्टिट्यूशन्स,*नई दिल्ली, गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया प्रेस

दी टाइम्स आफ इण्डिया, नई दिल्ली, 20 मई, 1979

नारायण, जय प्रकाश, (1961) *'स्वराज्य फॉर पीपुल',* (सम्पादित) मिश्रा, के0पी0 एवं अवस्थी, राजेन्दर, पालिटिक्स आफ परस्वेशन, बम्बई

डे0, एस0के0, (1960) *कम्यूनिटी डेवलपमेन्ट, ए मोमेन्ट इन बार्न,* इलाहाबाद

नम्बूदरीपाद, ई0एस0एस0(1962), पोलीटिकल पार्टीज एण्ड पंचायती राज, *दी इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन,* वाल्यूम–8, अंक–4, अक्टूबर–दिसम्बर, 1962

सन्थानम, के0(1965) *''कमेटी आन पंचायती राज इलेक्शन''* नई दिल्ली, मिनिस्ट्री ऑफ कम्यूनिटी डेवलपमेन्ट एन्ड को–आपरेशन, गवर्नमेन्ट आफॅ इण्डिया